काबुलीवाला

रवीन्द्रनाथ टैगोर

काबुलीवाला

रवीन्द्रनाथ टैगोर

आवरण एवं रेखांकन : रामबाबू

अनुराग ट्रस्ट

मूल्य : 20 रुपये

पहला संस्करण : 2005

पुनर्मुद्रण : जनवरी, 2010

प्रकाशक

अनुराग ट्रस्ट

डी - 68, निरालानगर

लखनऊ - 226020

लेजर टाइप सेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

काबुलीवाला

मेरी पाँच बरस की छोटी बेटी मिनी बिना बोले पल-भर भी नहीं रह सकती। संसार में जन्म लेने के बाद भाषा सीखने में उसने केवल एक वर्ष का समय खर्च किया था, उसके बाद से जब तक वह जगती रहती है एक पल भी मौन रहकर नष्ट नहीं करती। उसकी माँ बहुत बार डाँटकर उसका मुँह बन्द कर देती है, किन्तु मैं ऐसा नहीं कर पाता। चुपचाप बैठी मिनी देखने में इतनी अस्वाभाविक लगती है कि मुझे बहुत देर तक सहन नहीं होता। इसलिए मेरे साथ उसका वार्तालाप कुछ उत्साह के साथ चलता है।

सुबह मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवें परिच्छेद में हाथ लगाया ही था कि मिनी ने आते ही बात छेड़ दी, "पिताजी रामदयाल दरबान काक को कौआ कहता था। वह कुछ नहीं जानता। है न?"

संसार की भाषाओं की विभिन्नता के सम्बन्ध में उसे ज्ञानदान करने के लिए मेरे प्रवृत होने के पहले ही वह दूसरे प्रसंग पर चली गई, "देखो पिताजी, भोला कह रहा था कि आकाश में हाथी सूँड़ से पानी ढालता है, उसीसे वर्षा होती है। मैया री! भोला कैसी बेकार की बातें करता रहता है! खाली बकबक करता रहता है, दिन-रात बकबक लगाये रहता है।"

इस बारे में मेरी हाँ-ना की तनिक भी प्रतीक्षा किये बिना वह अचानक प्रश्न कर बैठी, "पिताजी, माँ तुम्हारी कौन होती हैं?"

मन-ही-मन कहा, 'साली'; ऊपर से कहा, "मिनी, जा तू भोला के साथ खेल! मुझे इस

समय काम है।''

तब वह मेरे लिखने की मेज के किनारे मेरे पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटनों पर हाथ रखकर बड़ी तेजी से 'आग्डूम वाग्डूम' कहते हुए खेलने लगी। मेरे सत्रहवें परिच्छेद में उस समय प्रतापसिंह कांचनमाला को लेकर अँधेरी रात में कारागार के उच्च वातायन से नीचे बहती नदी के जल में कूद रहे थे।

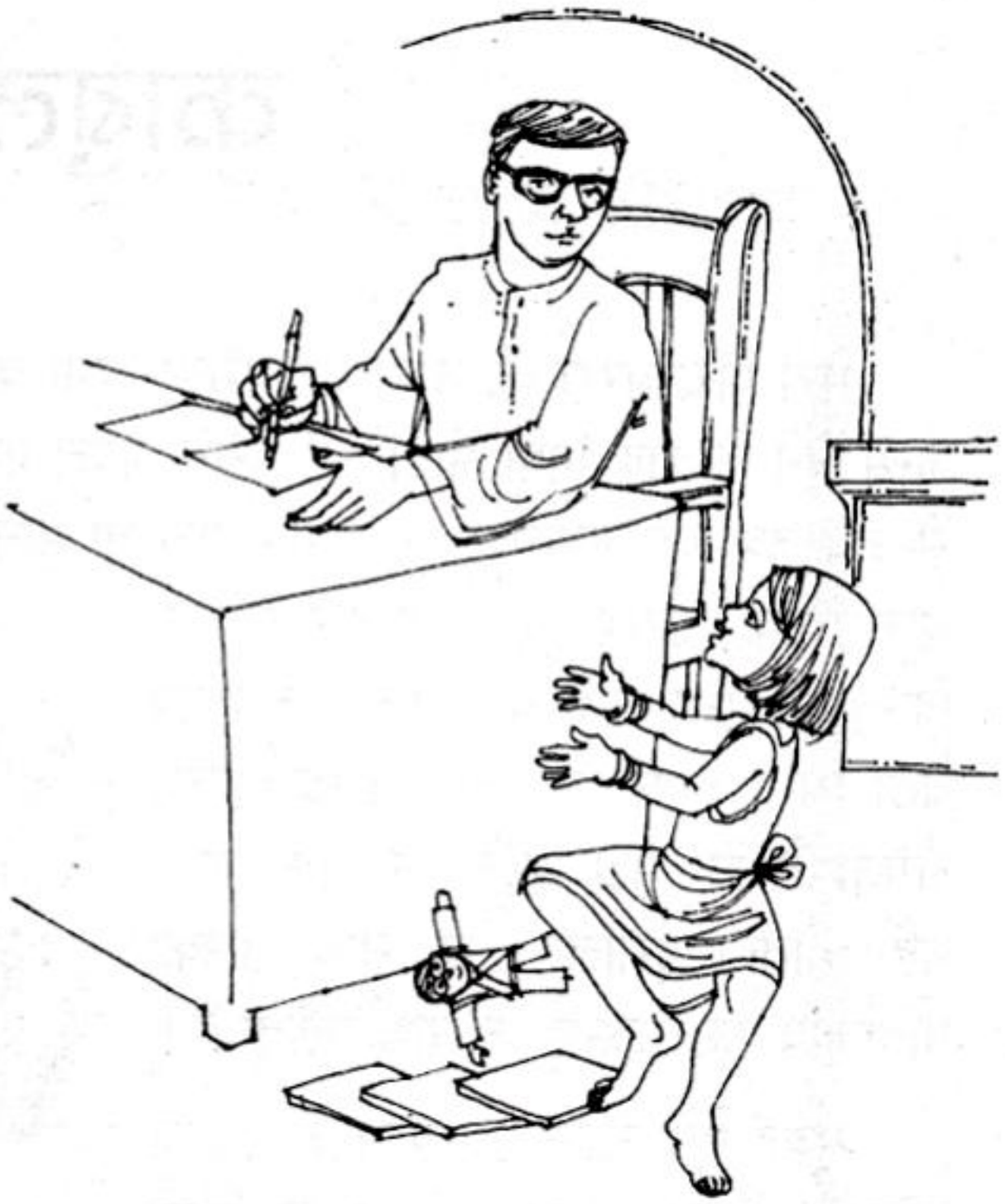

मेरा कमरा सड़क के किनारे था। सहसा मिनी 'आग्डूम वाग्डूम' का खेल छोड़कर जंगले की तरफ भागी और जोर-जोर से पुकारने लगी, ''काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले!''

मैले-से-ढीले-ढाले कपड़े पहने, सिरपर पगड़ी बाँधे, पीठपर झोली लिये, हाथों में अँगूरों के दो-चार बक्स लिये एक लम्बा काबुलीवाला सड़क पर धीरे-धीरे जा रहा था–उसे देखकर मेरी कन्या-रत्न के मन में कैसे भाव उठे, कहना कठिन है। उसने उसको ऊँची आवाज में बुलाना शुरू कर दिया। मैंने सोचा, 'बस, अब पीठ पर झोली लिये एक आफत आ खड़ी होगी, मेरा सत्रहवाँ परिच्छेद अब पूरा नहीं हो सकता।'

किन्तु, मिनी की चीख पर ज्यों ही काबुलीवाले ने हँसकर मुँह फेरा और मेरे घर की ओर आने लगा, त्यों ही वह झपटकर अन्तःपुर में भाग गई–उसका नाम-निशान भी न दिखाई पड़ा। उसके मन में एक तरह का अन्धविश्वास था कि उस झोली के भीतर खोज करने पर उसके समान दो-चार जीवित मानव-सन्तान मिल सकती हैं।

इधर काबुलीवाला आकर मुस्कराता हुआ मुझे सलाम करके खड़ा हो गया–मैंने सोचा,'यद्यपि प्रतापसिंह और कांचनमाला की अवस्था अत्यन्त संकटापन्न है तथापि आदमी को घर पर बुला लेने के बाद उससे कुछ न खरीदना शोभा नहीं देता।'

कुछ खरीदा। उसके बाद दो-चार बातें हुईं। अब्दुर्रहमान, रूस, अंग्रेज आदि को लेकर

सीमान्तप्रदेश की रक्षा-नीति के सम्बन्ध में बातचीत होने लगी।

अन्त में उठकर चलते समय उसने पूछा, "बाबू, तुम्हारी लड़की कहाँ गई।"

मैंने मिनी के भय को समूल नष्ट कर देने के अभिप्राय से उसे भीतर से बुलवा लिया–वह मेरी देह से सटकर काबुली के चेहरे और झोली की ओर सन्दिग्ध दृष्टि से देखती रही। काबुली उसे झोली से किशमिश, खुबानी निकालकर देने लगा, पर वह लेने को किसी तरह राजी नहीं हुई। दुगुने सन्देह से मेरे घुटने से सटकर रह गई। प्रथम परिचय इस प्रकार पूरा हुआ।

कुछ दिन बाद एक दिन सवेरे किसी काम से घर से बाहर जाते समय देखा, मेरी दुहिता द्वार के पास बेंच के ऊपर बैठकर अनर्गल बातें कर रही है और काबुलीवाला उसके पैरों के पास बैठा मुस्कराता हुआ सुन रहा है और बीच-बीच में प्रसंगानुसार अपना मतामत भी मिश्रित बंगाली में व्यक्त कर रहा है। मिनी को अपने पंचवर्षीय जीवन की अभिज्ञता में पिता के अतिरिक्त ऐसा धैर्यवान श्रोता कभी नहीं मिला था। मैंने यह भी देखा कि उसका छोटा आँचल बादाम-किशमिश से भरा था। मैंने काबुलीवाले से कहा, "उसे यह सब क्यों दिया। अब फिर मत देना!" और मैंने जेब से एक अठन्नी निकालकर उसको दे दी। बिना संकोच के अठन्नी लेकर उसने झोली में रख ली।

घर लौटकर देखा उस अठन्नी को लेकर पूरा झगड़ा मचा हुआ है।

मिनी की माँ सफेद चमचमाते हुए गोलाकार पदार्थ को लेकर कड़े स्वर में मिनी से पूछ रही थी, "तुझे यह अठन्नी कहाँ मिली?"

मिनी कह रही थी, "काबुलीवाले ने दी है।"

उसकी माँ कह रही थी, "काबुलीवाला से अठन्नी लेने तू क्यों गई।"

मिनी ने रोने की तैयारी करते हुए कहा,

"मैंने माँगी थोड़े ही थी, उसने स्वयं दी।"

मैंने आकर आसन्न विपद् से मिनी का उद्धार किया और उसे बाहर ले गया।

पता लगा, काबुलीवाले के साथ मिनी की यह दूसरी मुलाकात हो, ऐसा नहीं है। इस बीच में उसने प्रायः प्रतिदिन आकर घूस में पिस्ता-बादाम देकर मिनी के नन्हें लुब्ध हृदय पर बहुत-कुछ अधिकार कर लिया है।

मालूम हुआ, उन दो मित्रों में कुछ बँधी हुई बातें और परिहास प्रचलित हैं–जैसे रहमत को देखते ही मेरी कन्या हँसते-हँसते पूछती, "काबुलीवाले! ओ काबुलीवाले! तुम्हारी झोली में क्या है।"

रहमत अनावश्यक चन्द्रबिन्दु जोड़कर हँसते हुए उत्तर देता, "हाँति।"

अर्थात्, उसकी झोली में एक हाथी है। उसकी हँसी का यही गूढ़ रहस्य था। यह रहस्य बहुत ज्यादा गूढ़ था यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु इस परिहास से दोनों ही काफी विनोद का अनुभव करते रहते–और शरत्काल के प्रभात में एक वयस्क और अप्राप्तवयस्क शिशु का सरल हास्य देखकर मुझे भी अच्छा लगता।

उनमें एक और बात भी प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता, "मुन्नी, तुम क्या कभी ससुराल नहीं जाओगी!"

बंगाली परिवार की लड़की जन्म-काल से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती है, किन्तु हमारे कुछ आधुनिक ढंग के लोग होने के कारण बालिका को ससुराल के सम्बन्ध में परिचित नहीं कराया गया था। इसीलिए वह रहमत के अनुरोध को ठीक से नहीं समझ पाती थी, फिर भी प्रश्न का कुछ-न-कुछ उत्तर दिये बिना चुप रह जाना उसके स्वभाव के बिल्कुल विपरीत था–वह उलटकर पूछती, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमत काल्पनिक ससुर के प्रति खूब मोटा घूँसा तानकर कहता, "मैं ससुर को मारूँगा।"

सुनकर मिनी 'ससुर' नामक किसी एक अपरिचित जीव की दुरवस्था की कल्पना करके खूब हँसती।

शुभ्र शरत्काल था। प्राचीन काल में राजे-महराजे इसी ऋतु में दिग्विजय के लिए

निकलते थे। मैं कलकत्ता छोड़कर कभी कहीं नहीं गया, किन्तु इसीसे मेरा मन पृथ्वी-भर में चक्कर काटता फिरता है। मैं मानो अपने घर के कोने में चिरप्रवासी होऊँ, बाहर के जगत् के लिए मेरा मन सदा विकल रहता है। विदेश का कोई नाम सुनते ही मेरा मन दौड़ पड़ता है, उसी प्रकार विदेशी व्यक्ति को देखते ही नदी-पर्वत-अरण्य के बीच कुटी का दृश्य मन में उदित होता है और एक उल्लासपूर्ण स्वाधीन जीवन-यात्रा की बात कल्पना में साकार हो उठती है।

दूसरी ओर मैं ऐसा उद्भिजप्रकृति हूँ कि अपना कोना छोड़कर बाहर निकलते ही सिर पर वज्राघात हो जाता है। इसलिए सुबह अपने छोटे कमरे में मेज के सामने बैठकर इस काबुली के साथ बातचीत करके भ्रमण का मेरा काफी काम हो जाता। दोनों ओर बन्धुर दुर्गम दग्ध रक्तवर्ण उच्च गिरि-श्रेणी, बीच में संकीर्ण मरुपथ, भार से लदे ऊँटों की चलती हुई पंक्ति; साफा बाँधे वणिक, पथिकों में से कोई ऊँट पर, कोई पैदल, किसी के हाथ में बल्लम, किसी के हाथ में पुरानी चाल की चकमक-जड़ी बन्दूक—काबुली मेघ-मन्द्र स्वर में टूटी-फूटी बँगला में अपने देश की बातें कहता और मेरी आँखों के सामने उसकी तस्वीर आ जाती।

मिनी की माँ बड़े शंकालु स्वभाव की महिला थीं। रास्ते में कोई आवाज सुनते ही उन्हें लगता, दुनिया के सारे पियक्कड़ उन्हीं के घर को लक्ष्य बनाकर दौड़े चले आ रहे हैं। यह पृथ्वी सर्वत्र चोर, डकैत, शराबी, साँप, बाघ, मलेरिया, शूककीट, तिलचट्टों और गोरों से परिपूर्ण है, इतने दिन (बहुत अधिक दिन नहीं) धरती पर वास करने पर भी यह विभीषिका उनके मन से दूर नहीं हुई थी।

रहमत काबुलीवाले के सम्बन्ध में वे पूर्ण रूप से निःसशय नहीं थीं। उस पर विशेष दृष्टि रखने के लिए उन्होंने मुझसे बार-बार अनुरोध किया था। उनके सन्देह को मेरे हँसकर उड़ा देने का प्रयत्न करने पर उन्होंने मुझसे एक-एक करके कई प्रश्न पूछे, "क्या कभी किसी के बच्चे चुराये नहीं जाते? काबुल देश में क्या दास-व्यवसाय प्रचलित नहीं है? क्या एक भीमकाय काबुली के लिए एक छोटे-से बच्चे को चुरा ले जाना नितान्त असम्भव है?"

मुझे स्वीकार करना पड़ा, बात असम्भव हो, ऐसा तो नहीं, किन्तु अविश्वास्य है। पर विश्वास करने की शक्ति सबमें समान नहीं होती, इसीलिए मेरी पत्नी के मन में भय बना रहा। किन्तु, मैं इस कारण निर्दोष रहमत को अपने घर आने से मना न कर सका।

प्रतिवर्ष माघ के महीने के बीचोंबीच रहमत अपने देश चला आता। उस समय वह अपना सारा उधार रुपया वसूल करने में बड़ा व्यस्त रहता। दूर-दूर घूमना पड़ता, पर फिर भी वह मिनी को एक बार दर्शन दे जाता। देखने पर सचमुच ऐसा लगता मानों दोनों में कोई षड्यन्त्र चल रहा हो। जिस दिन वह सवेरे न आ पाता, उस दिन देखता कि वह सन्ध्या को आ पहुँचा है। अँधेरे में कमरे के कोने में ढीला-ढाला कुरता-पायजामा पहने, झोला-झोली वाले उस लम्बे आदमी को देखने पर मन में सचमुच ही अचानक एक आशंका उठने लगती। किन्तु, जब देखता कि मिनी 'काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले' कहती हँसती हुई दौड़ी चली आती एवं उन दो असमान वय वाले मित्रों में पुराना सरल परिहास चलता रहता, तो हृदय प्रसन्नता से भर उठता।

एक दिन सवेरे मैं अपने कमरे मे बैठा प्रूफ-संशोधन कर रहा था। विदा होने के पहले आज दो-तीन दिन से जाड़ा खूब कँपकँपा रहा था, चारों ओर एकाएक सीत्कार मच गई थी। जँगले को पार करके सुबह की धूप टेबिल के नीचे आकर मेरे पैरों पर पड़ रही थी, उसकी गरमाहट बड़ी मीठी लग रही थी। लगता है, आठ बजे का समय रहा होगा, सिर पर गुलूबन्द लपेटे तड़के टहलने वाले प्रायः सभी सवेरे की सैर पूरी करके घर लौट आए थे। तभी सड़क पर बड़े जोर का हल्ला सुनाई पड़ा। आँख उठाई तो देखा दो पहरेदार अपने रहमत को बाँधे लिये आ रहे हैं–उसके पीछे तमाशबीन लड़कों की टोली चली आ रही है। रहमत के शरीर तथा कपड़ों पर खून के दाग हैं और एक पहरेदार के हाथ में खून से सना छुरा है। मैंने दरवाजे के बाहर आकर पहरेदारों को रोककर पूछा, 'मामला क्या है?'

कुछ उनसे, कुछ रहमत से सुनकर मालूम हुआ कि हमारे एक पड़ोसी ने रामपुरी चादर के लिए रहमत से कुछ रुपया उधार लिया था–उसने झूठ बोलकर रुपया देने से इंकार कर दिया, और इसी बात को लेकर कहा-सुनी करते-करते रहमत ने उसके छुरा भोंक दिया।

रहमत उस झूठे को लक्ष्य करके भाँति-भाँति की अश्राव्य गालियाँ दे रहा था, तभी 'काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले' पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

पलक मारते रहमत का चेहरा कौतुकपूर्ण हँसी से प्रफुल्लित हो उठा। उसके कन्धे पर आज झोली नहीं थी, इसलिए झोली के सम्बन्ध मे उनकी नियमित चर्चा नहीं चल सकी।

मिनी ने छूटते ही उससे पूछा, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमत ने हँसकर कहा, "वहीं जा रहा हूँ।"

देखा, उत्तर मिनी को विनोदपूर्ण नहीं लगा, तब वह अपने हाथ दिखाकर बोला,"ससुर को मारता, पर क्या करूँ–हाथ बँधे हैं।"

घातक प्रहार करने के अपराध में रहमत को कई वर्ष की जेल हो गई।

उसकी बात करीब-करीब भूल गया। हम जिस समय घर में बैठकर सदा के समान नित्य नियमित काम एक के बाद एक दिन काट रहे थे, उस समय एक स्वाधीन पर्वतचारी पुरुष कारा-प्राचीर में किस प्रकार वर्ष बिता रहा था, यह बात हमारे मन में उठी भी नहीं।

और चंचलहृदया मिनी का आचरण तो अत्यन्त लज्जाजनक था, यह उसके पिता को भी स्वीकार करना पड़ेगा। उसने स्वच्छंदतापूर्वक अपने पुराने मित्र को भुलाकर पहले तो नबी सईस के साथ सख्य स्थापित किया। बाद में धीरे-धीरे ज्यों-ज्यों उसकी उम्र बढ़ने लगी त्यों-त्यों सखा के बदले एक-एक करके सखियाँ जुटने लगीं। यही नहीं, अब वह अपने पिता के लिखने-पढ़ने के कमरे में भी नहीं दिखाई पड़ती थी। मैंने तो उसके साथ एक प्रकार से कुट्टी ही कर ली थी।

न जाने कितने वर्ष बीत गए। और एक शरत्काल आया। मेरी मिनी का विवाह सम्बन्ध निश्चित हो गया। पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह होगा, कैलाशवासिन के साथ-साथ मेरे घर की आनन्दमयी भी पितृ-भवन में अँधेरा करके पतिगृह चली जायगी।

अत्यन्त सुहावना प्रभात था। वर्षा के बाद शरत् की नई धुली धूप ने जैसे सुहागे में गलाये हुए निर्मल सोने का-सा रंग धार लिया हो। यही नहीं, कलकत्ता की गलियों के भीतर के घुटनदार जर्जर ईटों वाले सटे हुए मकानों पर भी इस धूप की आभा ने एक अपूर्व लावण्य बिखेर दिया था।

आज मेरे घर में रात बीतते-न-बीतते ही शहनाई बज उठी थी। वह बाँसुरी मानो मेरे

मिनी अब ससुराल का अर्थ समझती थी, इस समय वह पहले के समान उत्तर नहीं दे सकी–रहमत का प्रश्न सुनकर लज्जा से लाल होकर मुँह फेरकर खड़ी हो गई। जिस दिन काबुलीवाले से मिनी की पहले भेंट हुई थी, मुझे उस दिन की बात याद हो आई। मन न जाने कैसा व्यथित हो उठा।

मिनी के चले जाने पर गहरी साँस लेकर रहमत जमीन पर बैठ गया। अचानक उसकी समझ में साफ आ गया, इस बीच उसकी पुत्री भी इसी तरह बड़ी हो गई होगी। उसके साथ ही नया परिचय करना होगा। वह उसे बिल्कुल पहले जैसी नहीं मिलेगी। इन आठ वर्षों में उस पर क्या बीती होगी, यह भी भला कौन जानता है। सवेरे के समय शरत्कालीन स्निग्ध सूर्य की किरणों में शहनाई बजने लगी, रहमत कलकत्ता की किसी गली में बैठकर अफगानिस्तान के किसी मरुपर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट निकालकर उसे दिया। कहा, "रहमत, तुम अपनी लड़की के पास अपने देश लौट जाओ; तुम्हारा मिलन-सुख मेरी मिनी का कल्याण करे।"

इन रुपयों का दान करने के कारण हिसाब में से उत्सव-समारोह के दो-एक अंग छाँट देने पड़े। जैसी सोची थी, बिजली की वैसी रोशनी नहीं की जा सकी। फौजी बैंड भी न आ सका। अन्तःपुर में स्त्रियाँ बड़ा असन्तोष प्रकट करने लगीं, किन्तु मंगल-आलोक से मेरा शुभ-उत्सव उज्ज्वल हो उठा।

■

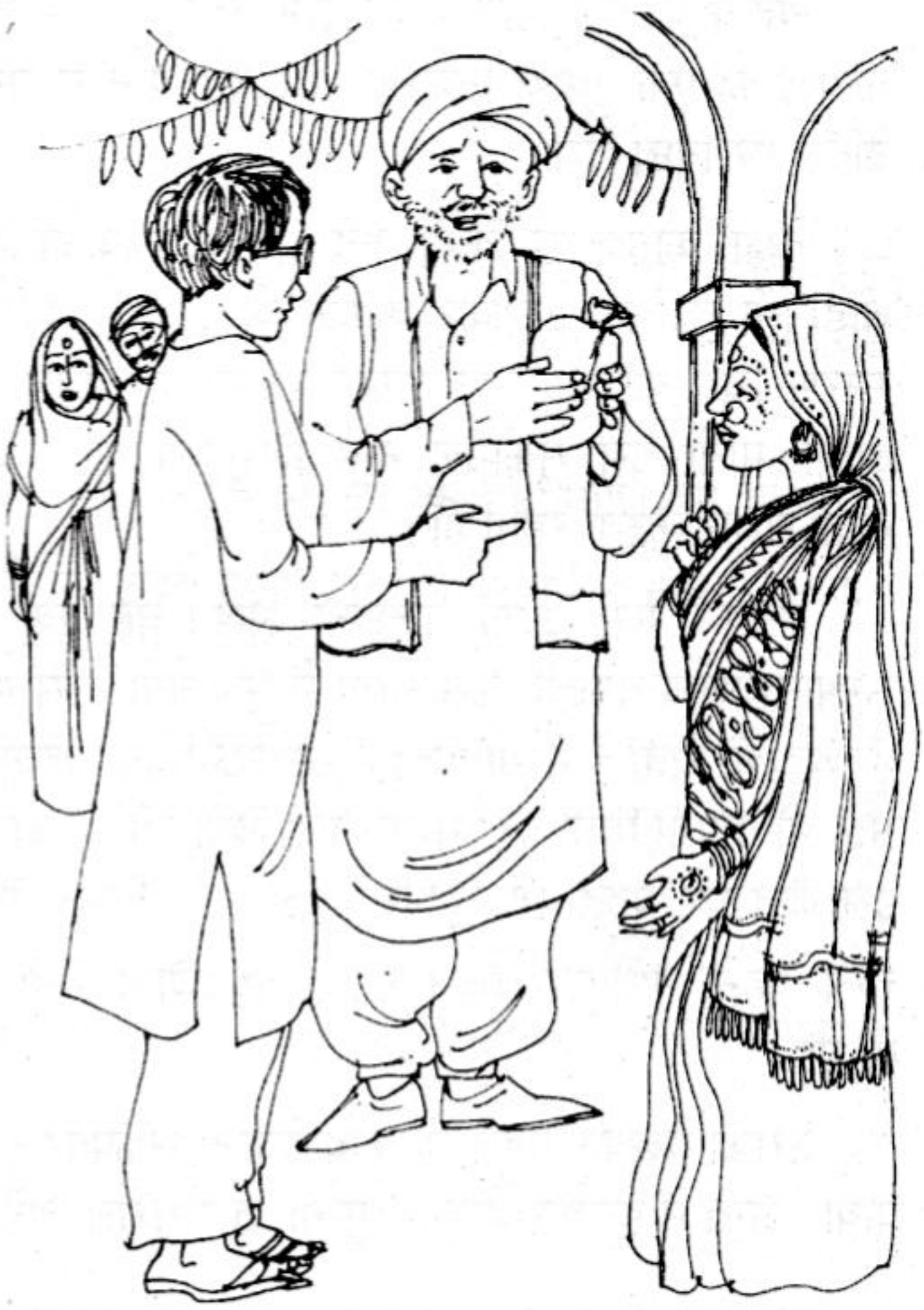

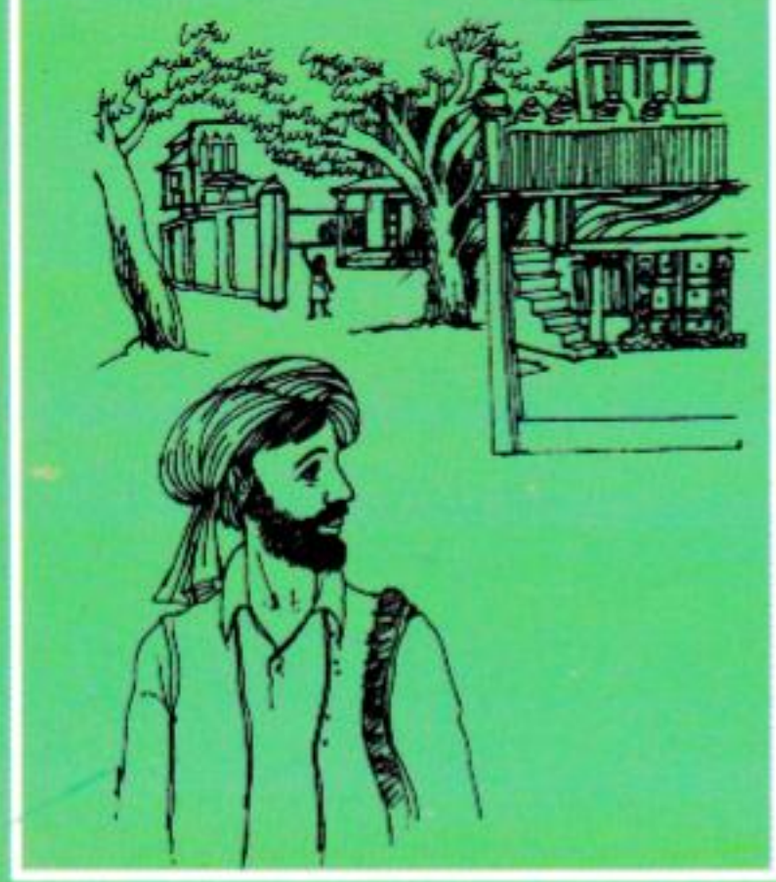

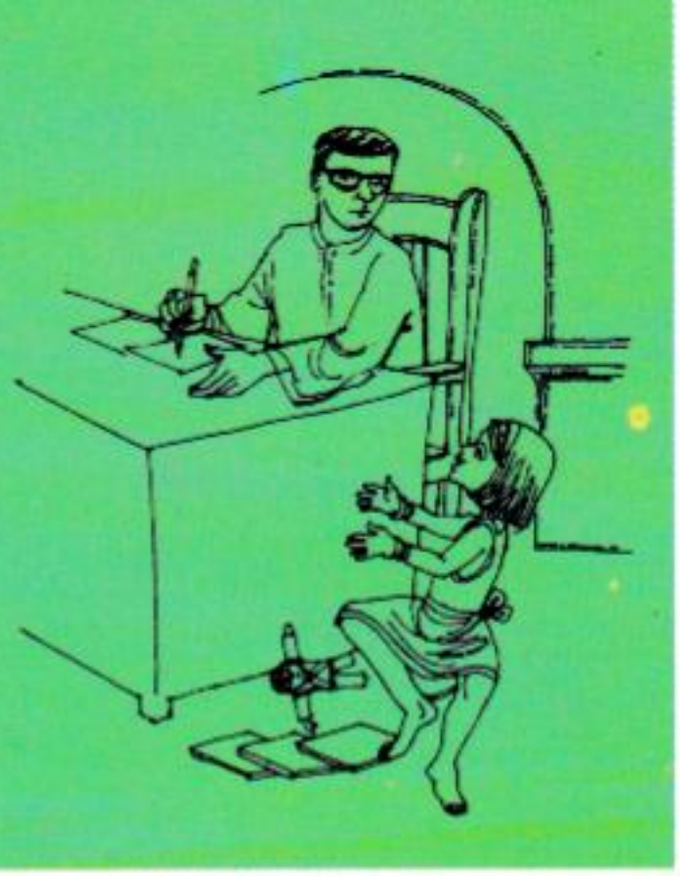

अनुराग ट्रस्ट